

दूसरा कुरिन्थियों

मसीही विश्वासियों के लिए "दूसरा कुरिन्थियों" नामक बाइबेल-पुस्तक के
प्रथम छः अध्यायों का एक अध्ययन

DOOSARA KURINTHIYON

First Hindi Edition : January-2009

Translated into Hindi by : **J.P. Pandey**
Assisted by : **R.K. Khullar**

Originally published in English by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. 22602 (U.S.A.), with the title "Lessons in Second Corinthians for Growing Believers", edited by Scott and Tim Mcmanigle, and the same is based on New Tribes Mission's method of chronologically teaching the scriptures.

Copyright © The Fellowship Bible Church,
Winchester, VA. (U.S.A.). All rights reserved.

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
एक	5–9
दो	10–16
तीन	17–20
चार	21–24
पांच	25–31
छः	32–38
सात	39–44

दूसरा कुरिन्थियों

नामक

बाइबल-पुस्तक के प्रथम छः अध्यायों का एक संक्षिप्त अध्ययन

संत पौलुस ने कुरिन्थुस में पहली बार अपनी द्वितीय मिशनरी यात्रा के दौरान सुसमाचार प्रचार किया था। बाद में, अपनी तृतीय मिशनरी यात्रा के समय इफिसुस से "पहला कुरिन्थियों" नामक पत्र लिखा, जिसमें उसने कुरिन्थुस के विश्वासियों की शारीरिकता को दर्शाते हुए यह समझाया कि उन्हें **आत्मा** की अगुवाई एवं अधीनता में जीवन व्यतीत करना चाहिए (प0 कुरि0 2:1-5)। वह पत्र तीतुस द्वारा कुरिन्थुस की मंडली तक पहुंचाया गया और पौलुस त्रोआस की ओर चल दिया। कुरिन्थुस की मंडली के साथ कुछ समय व्यतीत करने के बाद तीतुस पुनः पौलुस के पास जाने वाला था, किन्तु किसी कारणवश वह त्रोआस नहीं जा सका। अन्ततः जब पौलुस मैसीडोनिया गया, तब तीतुस भी वहां पहुंचा। तीतुस ने कुरिन्थुस की मंडली के बारे में पौलुस को जो कुछ बताया वह सुखद एवं दुखद दोनों प्रकार का समाचार था। सुखद बात यह थी कि कुरिन्थुस की मंडली ने पौलुस के पत्र को ग्रहण किया और उस व्यक्ति को अनुशासित किया जो उनके मध्य व्यभिचारी जीवन व्यतीत कर रहा था। दुखद समाचार यह था कि कुलुस्से और गलातिया क्षेत्र की कलीसियाओं की भांति उनके मध्य भी झूठे शिक्षक सक्रिय थे, जिससे कुछ विश्वासी भ्रमित हो रहे थे। वह झूठे शिक्षक अपने को सच्चा प्रेरित कहकर अपनी शिक्षा को सत्य एवं प्रामाणिक बता रहे थे और पौलुस की प्रेरिताई एवं संदेश को अमान्य। इस प्रसंग एवं परिस्थिति में पौलुस ने कुरिन्थुस की मंडली को अपनी द्वितीय पत्री लिखी।

"पौलुस की ओर से जो परमेश्वर के इच्छानुसार मसीह यीशु का प्रेरित है, और भाई तीमुथियुस की ओर से, कुरिन्थुस में परमेश्वर की कलीसिया तथा अखाया के पवित्र लोगों के नाम : तुम्हें हमारे पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की ओर से अनुग्रह और शांति मिले" (दू0 कुरि0

1:1-2)। पौलुस अपने अधिकतर लेखों के प्रारम्भ में अपनी प्रेरिताई का जिक्र करता है। चूंकि वह “परमेश्वर के इच्छानुसार” प्रेरित था, इसलिए उसकी शिक्षा प्रामाणिक (सत्य) थी। अपनी अन्य पत्रियों की भांति, पौलुस “दूसरा कुरिन्थियों” में भी प्रभु के विश्वासियों को यह स्मरण दिलाता है कि सच्चा अनुग्रह और सच्ची शांति सिर्फ पिता परमेश्वर एवं प्रभु यीशु में ही मिलती है। हां, मनुष्य अन्य तरीकों से शांति एवं अनुग्रह पाने की कोशिश करता है, लेकिन सच्ची शांति एवं सच्चा अनुग्रह सिर्फ परमेश्वर-कृत उस उपाय के द्वारा ही उपलब्ध हैं जिसे उसने अपने एकलौते पुत्र मसीह यीशु में सम्पन्न किया है।

“धन्य है परमेश्वर, हमारे प्रभु यीशु मसीह का पिता, जो दयालु पिता और समस्त शांति का परमेश्वर है। वह हमें हमारे सब क्लेशों में शांति देता है कि हम भी उनको जो क्लेश में हों वैसी ही शांति दे सकें जैसी परमेश्वर ने स्वयं हमको दी है” (दू० कुरि० 1:3-4)। हम परीक्षाओं और परेशानियों से भरे एक पतित संसार में रहते हैं। कठिनाइयाँ और परेशानियाँ सबके जीवन में आती हैं, लेकिन पौलुस हमें यह समझाता है कि समस्त कठिनाईयों में सच्ची तसल्ली देने वाला केवल प्रभु परमेश्वर ही है। वह कैसे सांत्वना देता है? कुलुस्सियों की पत्री के दूसरे अध्याय के दूसरे पद में यह लिखा है: “जिससे कि उनके मन परस्पर प्रेम में बंध कर प्रोत्साहित हों। वे समझ की पूर्ण निश्चयता से उस समस्त धन को प्राप्त करें जिसका परिणाम परमेश्वर का रहस्य अर्थात् मसीह को पहिचानना है”। यहां पौलुस स्पष्ट बताता है कि सत्य प्रोत्साहन एवं निश्चयता (आशा-भरोसा) प्रदान करता है। यूहन्ना के सुसमाचार के आठवें अध्याय के बत्तीसवें पद में भी लिखा है: “तुम सत्य को जानोगे और सत्य तुमको स्वतंत्र करेगा”। परमेश्वर हमें शांति व सांत्वना इसी प्रकार प्रदान करता है – सत्य के द्वारा। प्रभु यीशु ने कहा : “मार्ग, सत्य और जीवन मैं ही हूँ” (यूहन्ना 14:6)।

जैसे-जैसे मसीह के ज्ञान-पहचान रूपी सत्य में (अर्थात् हमारे लिए मसीह द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार-कार्य तथा मसीह में हमारी स्थापना के फलस्वरूप हमें प्राप्त ईश्वरीय आशिषों के ज्ञान-पहचान में) पवित्र आत्मा हमारी अगुवाई करता है जैसे-वैसे (उसी अनुपात में) हमारा हृदय कठिनाईयों के मध्य भी प्रभु की सांत्वना एवं सुनिश्चिद्यता पाता है। सत्य के द्वारा हमें सांत्वना व शांति देने के पीछे परमेश्वर का एक यह उद्देश्य भी होता है कि दूसरों को सांत्वना-शांति देने हेतु वह हमें इस्तेमाल कर सके; और इस प्रकार मसीह के साथ विश्वासी की पहचान रूपी सच्चाई के ज्ञान में हम दूसरों की मदद कर सकें। हमारी मंडलियों के अनेक लोग कठिन परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। ऐसे लोगों की सबसे प्रमुख आवश्यकता (समस्या-समाधान) बेहतर परिस्थितियां नहीं हैं, बल्कि मसीह के साथ अपनी पहचान का स्पष्ट ज्ञान और उसमें प्राप्त आत्मिक आशिषों को अपनाना है।

“क्योंकि जैसे मसीह के दुख हमारे लिए अधिकाई से हैं, वैसे ही हमारी शांति भी मसीह के द्वारा अधिकाई से है” (दू0 कुरि0 1:5)। मसीही विश्वासी होने से हम दुःख और परेशानियों से छूट के हकदार नहीं हो जाते। प्रायः मसीह के लोगों को अपने मसीही विश्वास के कारण दुःख व सतावट सहना पड़ता है, लेकिन मसीह के द्वारा प्राप्त ईश्वरीय (आत्मिक) आशिषों के ज्ञान-पहचान से प्राप्त शांति-सांत्वना की महानता व महत्व के समक्ष सारे दुःख-दर्द अमहत्वपूर्ण हो जाते हैं। “और वास्तव में वे सब, जो मसीह यीशु में भक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, सताए जाएंगे” (दू0 तीमु0 3:12)। आत्मा की अधीनता में गंभीर आत्मिक जीवन व्यतीत करने पर इस संसार में सतावट अवश्य आएगी, परन्तु ‘मसीह में’ बहुतायत से प्राप्त शांति-सांत्वना ऐसी सतावट से अत्याधिक बढ़कर आशीषपूर्ण होगी।

“परन्तु यदि हम क्लेश उठाते हैं तो यह तुम्हारी शांति और उद्धार के लिए है। यदि हमें शांति मिली है तो यह तुम्हारी शांति के लिए है, जो उन

क्लेशों को धीरज से सहने में सहायक होती है जिनको हम भी सहते हैं" (दू० कुरि० 1:6)। प्रभु परमेश्वर हमारे दैनिक जीवन की परिस्थितियों का उपयोग करते हुए हमें मसीह के स्वभाव में ढाल रहा है। इस कार्य में कभी वह दुःखद परिस्थितियों का इस्तेमाल करेगा और कभी सुखद। बहरहाल इन सबके द्वारा वह हमें शारीरिकता के अनुसार कम और आत्मा के अनुसार अधिक चलना सिखा रहा है, ताकि अपने 'एकलौते पुत्र' के स्वभाव में हमें अधिकाधिक ढालता जाए (रोमि० 8:28-29)। हम में इस परिवर्तनकारी प्रक्रिया के दौरान, हमारे सम्पर्क में आने वाले लोगों के जीवन में शांति और उद्धार की साक्षी हेतु परमेश्वर हमें इस्तेमाल करता है (प० थिस्स० 1:6-8)। हम जितना अधिक मसीह के स्वभाव में ढलते जाते हैं, उतना ही अधिक इस मार्ग में औरों की अगुवाई करने योग्य होते हैं।

"तुम्हारे विषय में हमारी आशा सुदृढ़ है, क्योंकि हम यह जानते हैं कि जिस प्रकार तुम हमारे कष्टों में सहभागी हो उसी प्रकार हमारी शांति में भी हो" (दू० कुरि० 1:7)। पौलुस यह आशा-भरोसा करते हुए लिख रहा था कि इस सच्चाई का कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासियों के जीवन में गहरा प्रभाव पड़ेगा। यद्यपि उस मंडली के विश्वासियों के विश्वास की शुरुआत सत्तावट के साथ हुई, तथापि पौलुस यह आशा-भरोसा किए था कि पवित्र आत्मा, और गहन सच्चाईयों के ज्ञान-अनुभव में उनकी अगुवाई करेगा तथा मसीह में प्राप्त शांति व सांत्वना उनमें अधिकाई से बढ़ती जाएगी।

"क्योंकि हे भाइयों, हम यह नहीं चाहते कि तुम उस क्लेश से अनजान रहो जो हमको एशिया में सहना पड़ा। हम ऐसे भारी बोझ से दब गए थे जो हमारे सामर्थ्य से बाहर था, यहां तक कि हम जीवन की आशा भी छोड़ बैठे थे। वास्तव में, हमें ऐसा लगा जैसे कि हम पर मृत्यु-दंड की आज्ञा हो चुकी हो, जिससे कि हम अपने आप पर नहीं वरन् परमेश्वर पर भरोसा रखें जो मृतकों को जिला उठाता है। उसी ने हमको मृत्यु के

इतने भारी संकट से बचाया, और भविष्य में भी अवश्य बचाएगा। उसी पर हमने आशा रखी है। और वही हमें आगे भी बचाता रहेगा। तुम भी इसमें अपनी प्रार्थनाओं के द्वारा मिलकर हमारी सहायता करोगे जिससे कि हमारी ओर से बहुत से लोगों की प्रार्थनाओं के द्वारा उस अनुग्रह के लिए जो हम पर हुआ, धन्यवाद दिया जा सके" (दू० कुरि० 1:8)। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए पौलुस ने एक उदाहरण दिया। वह कहता है कि (तत्कालीन) एशिया में उसकी सेवकाई के दौरान एक ऐसा समय भी आया जबकि उसने तथा उसके साथियों ने यह सोचा कि अब वे जिन्दा नहीं बचेंगे। लेकिन अपने ऊपर आई इस मुसीबत के मकसद को बताते हुए पौलुस यह लिखता है कि इस खतरनाक आजमाइश का इरादा हमें यह सिखाना था कि स्वयं पर नहीं, प्रभु परमेश्वर पर आशा-भरोसा रखना सीखें जो मुर्दों को जिन्दा कर देता है। हमारे जीवन में प्रभु परमेश्वर ऐसी परिस्थिति पैदा करता है कि हम 'क्रूस के तले' जीना सीखें, जहां हमारा पुराना मनुष्यत्व (मसीह के साथ) क्रूसित किया जा चुका है। ऐसी परिस्थितियों द्वारा हम अपनी असहाय व निरुपाय अवस्था को पहचानते हैं (लूका 9:23)। तब हम अपनी शारीरिकता (रोमि० 6:14) के शासन-अधीनता से मुक्त होकर जीवन की नई चाल (रोमि० 6:4) में चलते हैं, और इस प्रकार आत्मा हमारे ध्यान-मन को मसीह की ओर आकृष्ट करते हुए हममें ख्रीष्ट-जीवन प्रकट करता है (दू० कुरि० 3:18)। दूसरा कुरिन्थियों की पत्रि के पहले अध्याय के दसवें पद के अनुसार, अपनी निरुपायता को पहचानते रहने, शारीरिकता के शासन-अधिकार से मुक्त होते रहने तथा मसीह के स्वभाव में ढलते रहने की यह आध्यात्मिक प्रक्रिया, हमारे विश्वसनीय परमेश्वर द्वारा, हमारे जीवन में जीवन भर जारी रहेगी (फिलि० 1:6)।

“क्योंकि हमारा गर्व अर्थात् हमारे विवेक की साक्षी यह है कि हमने इस संसार में, तथा विशेषकर तुम्हारे प्रति, शारीरिक ज्ञान के अनुसार नहीं परन्तु परमेश्वर के अनुग्रह से पवित्रता और भक्तिपूर्ण सच्चाई से आचरण किया” (दू० कुरि० 1:12)। पवित्र शास्त्र के इस लेखांश का अध्ययन करते समय हमें यह ध्यान में रखना है कि झूठे शिक्षक पौलुस की शिक्षा को अविश्वसनीय ठहराने (साबित करने) में लगे थे और उस पर अनेक झूठे आरोप लगा रहे थे। इसलिए पौलुस कुरिन्थुस की मंडली से कहता है कि उसकी सेवकाई परमेश्वर एवं उसके अनुग्रह पर दीनतापूर्ण भरोसे तथा आत्मा पर आधारित है, शारीरिकता पर नहीं। वह इस बात में आनन्दित था कि उसका विवेक साफ था। पवित्र आत्मा के अनुसार जीवन व्यतीत करने के कारण दूसरों के प्रति उसकी सेवकाई सच्ची एवं लाभप्रद थी, न कि स्वार्थपरक या अपनी बड़ाई की सेवकाई। शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर दूसरों के प्रति हमारी सेवा के पीछे भी स्वार्थ सिद्धि की भावना होगी। हां, ऐसे लोग भी होंगे जो सच्चे ईश्वरीय अनुग्रह की शिक्षा के विरोधी होते हैं और सत्य की निन्दा करते हैं (दू० पत० 2:1-2)। परन्तु हम जितना ही अधिक आत्मा के अनुसार जीवन व्यतीत करेंगे उतना ही अधिक परमेश्वर के समक्ष हममें भी शुद्ध विवेक होगा।

“जो तुम पढ़ते और समझते हो उसे छोड़ हम और कुछ नहीं लिखते, और मैं आशा करता हूँ कि तुम उस बात को पूर्ण रूप से समझ सकोगे जिसे तुमने आंशिक रूप से समझा है कि जैसे हम तुम्हारे गर्व का

कारण हैं वैसे ही तुम भी हमारे प्रभु यीशु के दिन में हमारे गर्व का कारण ठहरो” (दू० कुरि० १:१३-१४)। ऐसा प्रतीत होता है कि पौलुस को बदनाम करने के लिए झूठे शिक्षक उस पर बेईमानी (कपट या मिथ्याचार) का दोष लगा रहे थे। वे यह सिखाने में लगे थे कि पौलुस जो बातें लिखता है उनका ज्यों का त्यों मतलब नहीं लगाता। इसीलिए यहां पौलुस कुरिन्थुस के विश्वासियों को यह समझाता है कि उसके द्वारा लिखी व कही गई बातों का अर्थ ज्यों का त्यों है। आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने वाले लोगों का जीवन सच्चा, सुस्पष्ट एवं कपटरहित होता है। ऐसे लोग मन में कुछ और, जुबान पर कुछ और जैसा कपटी व्यवहार नहीं करते। इसके विपरीत शारीरिकता का जीवन व्यतीत करने वाले अपने मन की नीयत-भावना को छिपाने के मकसद से एक बाहरी (दिखावटी) “मुखौटा” लगाए रहते हैं।

अतः पौलुस आशा व्यक्त करता है कि कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासी उस पर उसी प्रकार विश्वास व भरोसा रखेंगे जैसा कि उन्होंने तब किया था जब उसने उनके मध्य शुरू में सुसमाचार सुनाया था। आत्मा के अनुसार जीवन बिताते हुए पौलुस अपनी नहीं बल्कि कुरिन्थुस के विश्वासियों की चिन्ता कर रहा था। क्योंकि पौलुस पर संदेह करना और उसके द्वारा दिए गए संदेश को अस्वीकार करने का मतलब था – सत्य-शिक्षा का इनकार करके झूठे शिक्षकों के विधर्म, भ्रांति एवं अपसिद्धांत के पीछे जाना। पौलुस की सबसे बड़ी आकांक्षा यह थी कि विश्वासी लोग सत्य में विचरण करें और ख्रीष्ट के स्वभाव में ढलते जाएं (गला० ४:१९)।

“इसी विश्वास के साथ मेरा पहले तुम्हारे पास आने का निश्चय था कि तुम दूसरी बार आशिष पा सको, अर्थात् यह कि मैं तुम्हारे पास से होता हुआ मैसीडोनिया जाऊं और मैसीडोनिया से फिर तुम्हारे पास आऊं, और तुमसे यहूदिया की यात्रा के लिए सहायता प्राप्त करूं। जब मैंने ऐसा

निश्चय किया तो क्या मैं दुविधा में था? अथवा जो मैं निश्चय करता हूँ क्या वह शरीर के अनुसार करता हूँ कि एक ही समय में 'हां, हां' कहूँ और 'नहीं, नहीं' भी" (दू० कुरि० १:१५-१७)? पौलुस मैसीडोनिया जाते-आते समय कुरिन्थुस की मंडली से भेंट के बारे में उन्हें खबर दे चुका था, लेकिन परमेश्वर ने उसे वहां जाने की अनुमति नहीं दी (प्रेरित १६:६-७)। इस बात का भी बहाना बना कर झूठे शिक्षक यह सिखा रहे थे कि जो व्यक्ति वायदा करके नहीं आया उसकी शिक्षा का अनुसरण नहीं करना चाहिए। पौलुस कुरिन्थियों के पास जाने की योजना तो बनाए था किन्तु उसकी योजना पूरी नहीं हो सकी, और इसका अनुचित अर्थ लगाते हुए झूठे शिक्षक यह कहने लगे थे कि पौलुस सिर्फ अपने स्वार्थ की चिन्ता करता है, उनकी नहीं। इसीलिए पौलुस इन पदों में स्पष्ट करता है कि उसने उनके पास आने की अपनी योजना झटपट मनमौजी (शारीरिक) तौर पर नहीं बदली। वह तो आत्मा की अगुवाई, विवशता, नियंत्रण एवं प्रभाव में ऐसा करने के लिए मजबूर हुआ। उसका निर्णय पवित्र आत्मा की अगुवाई पर आधारित था।

“जैसा कि परमेश्वर विश्वासयोग्य है वैसे ही तुम्हारे प्रति हमारे वचन में 'हां' और 'नहीं' दोनों एक साथ नहीं पाए जाते। क्योंकि परमेश्वर के पुत्र यीशु मसीह में, जिसका प्रचार तुम्हारे बीच हमने अर्थात् सिलवानुस, तीमुथियुस तथा मैंने किया, उसमें कभी 'हां' कभी 'न' तो नहीं है, वरन सदा 'हां' ही 'हां' है। क्योंकि परमेश्वर की जितनी भी प्रतिज्ञाएं हैं, यीशु में 'हां' ही 'हां' हैं। इसीलिए उसके द्वारा हमारी आमीन भी परमेश्वर की महिमा के लिए होती है” (दू० कुरि० १:१८-२०)। जैसे परमेश्वर सच्चा है उसी तरह पौलुस ने कुरिन्थुस की मंडली को सच्ची शिक्षा दी थी। पौलुस की शिक्षा का केन्द्र बिन्दु **मसीह** है जिसके द्वारा प्रभु परमेश्वर ने अपनी समस्त प्रतिज्ञाओं को विश्वासयोग्यता से पूर्ण किया। इसलिए कुरिन्थुस की मंडली द्वारा पौलुस की शिक्षा का तिरस्कार

करना मसीह का इनकार करने समान होता क्योंकि **मसीह** ही पौलुस का संदेश था। **मसीह में** सारी प्रतिज्ञाएं पूर्ण होने की बात एक बहुत ही महत्वपूर्ण कथन है (इफि० १:१०)। इसका भावार्थ यह है कि अब मनुष्य के लिए कुछ करना शेष नहीं रह गया – उसे तो सिर्फ मसीह द्वारा पूर्ण किए गये (उद्धार) कार्य या उपाय को विश्वास द्वारा अपनाना है। मसीह द्वारा पूर्ण किए गये कार्य पर विश्वास करके उसको अपनाने से पहले उसके द्वारा संपन्न कार्य को जानना जरूरी है। यह सिर्फ पवित्र आत्मा ही परमेश्वर के वचन द्वारा हम पर प्रकट कर सकती है। परमेश्वर के लिपिबद्ध वचन के द्वारा परमेश्वर के जीवित वचन को हमारे जीवन में प्रकट करना पवित्र आत्मा की भूमिका है (यूह० १६:१३-१४)।

“अब जो तुम्हारे साथ हमें मसीह में दृढ़ करता है और जिसने हमारा अभिषेक किया वह परमेश्वर है, जिस ने हम पर मुहर भी लगाई और पवित्र आत्मा को बयाने में हमारे हृदयों में दिया” (दू० कुरि० १:२१-२२)। पौलुस यहां यह स्पष्ट कर रहा है कि कुरिन्थुस के लोगों को उससे जो सुसमाचार-शिक्षा मिली थी, वह मानवीय बुद्धि से उपजे शब्द-पुष्प नहीं थे जिनका उनके जीवन पर कोई आन्तरिक असर नहीं पड़ा। इसके विपरीत पौलुस से यह शिक्षा मिली कि परमेश्वर ने उन्हें **मसीह में** स्थापित कर दिया है और उन पर अपने पवित्र आत्मा की मुहर लगाकर यह सुनिश्चित कर दिया है कि मसीह तथा उसके द्वारा संपन्न उद्धार-कार्य की समस्त आत्मिक आशिषें सदा-सर्वदा के लिए उनकी हैं (इफि० ४:३०; रोमि० ८:१७ – ख्रीष्ट के साथ सह उत्तराधिकारी)। कुरिन्थुस के विश्वासियों के लिए यह जानना ओर समझना बहुत जरूरी था कि मसीह में उन्हें परमेश्वर की समस्त प्रतिज्ञाएं सचमुच प्राप्त हो चुकी हैं और इन प्रतिज्ञाओं (आशिषों) का अनुभव असम्भव नहीं है।

“परन्तु मैं परमेश्वर को अपना साक्षी ठहराता हुआ कहता हूं कि मैं दूसरी बार कुरिन्थुस इसलिए नहीं आया कि तुम्हें दुख से बचाए रखूं।”

ऐसी बात नहीं कि हम तुम्हारे विश्वास के विषय में अधिकार जताना चाहते हैं, परन्तु हम तुम्हारे आनन्द के लिए तुम्हारे सहकर्मी हैं, क्योंकि तुम विश्वास में स्थिर रहते हो” (दू० कुरि० 1:23-24)। अब पौलुस उनके पास नहीं पहुंचने को और स्पष्ट करता है। वह कहता है कि उनके पक्ष में सोचकर वह झटपट उनके पास इसलिए भी नहीं पहुंचा ताकि उनको पाप-सुधार सम्बन्धी पहली पत्री भेजने के शीघ्र बाद उसके वहां पहुंचने से कहीं ऐसा न लगे कि वह जबरन अपनी बात लागू कराने आया है। विश्वास करने के लिए वह उन पर दबाव नहीं डाल सकता था। वह तो सिर्फ सत्य की ओर इशारा करके उनके जीवन में परिवर्तनकारी कार्य के लिए पवित्र आत्मा पर आशा-भरोसा रखना चाहता था। सत्य को जानने, समझने तथा सत्य को अपनाने (विश्वास करने) के द्वारा ही वे विश्वास के सहारे उसमें स्थिर रह सकते थे।

“मैंने अपने लिए यह निश्चय कर लिया था कि तुम्हारे पास पुनः दुख देने न आऊं। क्योंकि यदि मैं तुम्हें दुख पहुंचाऊं तो मुझे सुखी कौन करेगा, सिवाय उसके जिसे मैंने दुख पहुंचाया? और यही बात मैंने तुम्हें लिखी कि आकर उनसे दुख न पाऊं जिनसे मुझे आनन्द मिलना चाहिए, और मुझे तुम सब पर यह भरोसा था कि जो मेरा आनन्द है वही तुम सब का भी हो। मैंने तुम्हें बड़े क्लेश और हृदय-वेदना से आंसू बहा-बहाकर लिखा था, इसलिए नहीं कि तुमको दुख पहुंचे परन्तु इसलिए कि तुम उस प्रेम को जान सको, जो मुझे विशेषकर तुम्हारे प्रति है” (दू० कुरि० 2:1-4)। झूठे शिक्षकों द्वारा पौलुस पर यह आरोप लगाया जा रहा था कि वह अविश्वसनीय एवं कपटी है। किन्तु इन पदों से पौलुस की सच्चाई एवं विश्वसनीयता पर लगाए गये आरोपों का खोखलापन सुस्पष्ट है। कुरिन्थुस के विश्वासियों के लिए पौलुस की प्राथमिकता यह थी कि उनके जीवन में मसीह के स्वभाव का निर्माण हो (गला० 4:19)। इस आध्यात्मिक उद्देश्य के महत्व के समक्ष उसने वहां जाने में विलम्ब किया ताकि उन्हें

मन—फिराव एवं मसीह के स्वभाव में विकसित होने का और अधिक अवसर मिले, तथा आगे चलकर जब वह उनके पास जाए तब उनके मध्य पूर्ववत् पापाचार से पुनः दुःखित होने के बजाय उनकी आत्मिक उन्नति को देखकर परमेश्वर की महिमा करने का अवसर मिले। पहला कुरिन्थियों की पत्री को पढ़ने से स्पष्ट है कि उस मंडली में फैले पापाचार से पौलुस बहुत दुःखित व अप्रसन्न था। चौथे पद के शब्दों से साफ है कि पहली पत्री किस विचार—भावना में लिखी गई थी : “...बड़े क्लेश और हृदय—वेदना से आंसू बहा—बहाकर”। शारीरिकता में जीवन जीने पर पाप और असफलता में गिरे लोगों के प्रति हम दोषारोपण व क्रोध व्यक्त करते हैं; जबकि पवित्र आत्मा के अधीन जीवन व्यतीत करते हुए हम ऐसे लोगों के प्रति प्रेम व सहानुभूति भरा व्यवहार करते हैं अर्थात् उन्हें संभलने व सुधरने हेतु सहारा देते हैं।

“पर यदि किसी ने दुःख दिया है तो उसने केवल मुझे नहीं, परन्तु यदि बढ़ा—चढ़ाकर न कहूं तो थोड़ा—बहुत तुम सब को भी दिया है। ऐसे व्यक्ति के लिए बहुमत से जो दंड दिया गया वही पर्याप्त है। इसके विपरीत तुम उसे क्षमा करो और शांति दो, कहीं ऐसा न हो कि वह अत्यधिक शोक में डूब जाए। इसलिए मेरा तुम से आग्रह है कि तुम उसे अपने प्रेम का प्रमाण दो। मैंने तुम्हें इस अभिप्राय से लिखा कि तुम्हें परखूं कि तुम हर बात में आज्ञाकारी हो या नहीं” (दू० कुरि० 2:5—9)। इन पदों में पौलुस ने कुरिन्थुस की मंडली के उस व्यक्ति का जिक्र किया है जो अपने पिता की पत्नी को रखे था। अपनी पहली पत्री में पौलुस ने यह कहा था कि उस कुकर्मी व्यक्ति का कलीसिया द्वारा अनुशासित किया जाना बहुत जरूरी है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुरिन्थुस की कलीसिया ने उस पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की थी। संभवतः वह कलीसियाई संगति में वापिस आना चाहता था, लेकिन मंडली के बहुत से विश्वासी उसे पुनः अपने मध्य ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए पौलुस

यह समझाता है कि उस व्यक्ति के मन फिराव से कलीसियाई अनुशासनात्मक कार्यवाही का उद्देश्य पूरा हो गया है, और अब उसे क्षमा करके मंडली के लोगों को अपने मध्य ग्रहण करना चाहिए, नहीं तो वह घोर निराशा का शिकार हो जाएगा। स्मरण रहे कि कलीसियाई अनुशासनात्मक कार्यवाही का मकसद दंडादेश देना व न्याय करना नहीं बल्कि पुर्नस्थापना (पुनः वापसी) एवं क्षमा है। व्यक्ति विशेष द्वारा पाप-स्वीकरण के बाद भी किसी कलीसिया द्वारा उसके पाप को क्षमा नहीं करना परमेश्वर के अनुग्रह की अनदेखी करना है और उस व्यक्ति को मसीह में परमेश्वर द्वारा दिये गये क्षमा-दान को इनकार करना है।

“परन्तु जिसे तुम किसी बात में क्षमा करते हो उसे मैं भी क्षमा करता हूँ, क्योंकि वास्तव में मैंने जो कुछ क्षमा किया है – यदि मुझे कुछ क्षमा करने को था – मसीह की उपस्थिति में तुम्हारे कारण किया है, कि शैतान हमसे कोई लाभ न उठाए, क्योंकि हम उसकी युक्तियों से अनजान नहीं हैं” (दू० कुरि० 2:10-11) । कुरिन्थुस की मंडली से पौलुस यह कहता है कि उस व्यक्ति को यदि वे लोग क्षमा करेंगे तो वह भी क्षमा कर देगा। क्योंकि हमारे द्वारा क्षमा किया जाना, मसीह द्वारा हम सबको प्राप्त क्षमा पर आधारित है। मन फिराव करने वाले किसी विश्वासीजन को क्षमा नहीं करना परमेश्वर के अनुग्रह की अवहेलना करना है और हमारे शारीरकतापूर्ण आचरण का द्योतक है, जो स्वयं को परमेश्वर से बड़ा या महत्वपूर्ण दर्शाना चाहता है। शारीरकता के अधीन हम परमेश्वर की बातों को समझने से चूक जाते हैं और इस प्रकार भ्रमित (प० कुरि० 2:14) होकर शैतान को अवसर प्रदान करते हैं। ऐसे शारीरक चाल-चलन में बने रहने पर हम परमेश्वर के अनुग्रह एवं सत्य से भटकने लगते हैं।

“जब मैं मसीह का सुसमाचार सुनाने के लिए त्रोआस आया, और प्रभु ने जब मेरे लिए द्वार खोला, तब अपने भाई तीतुस को न पाकर मेरी आत्मा व्याकुल हो उठी, अतः उनसे विदा होकर मैं मैसीडोनिया की ओर बढ़ गया” (दू० कुरि० २:१२-१३)। पौलुस ने कुरिन्थियों के नाम अपनी पहली पत्री इफिसुस से लिखी थी और तीतुस द्वारा उस पत्री को कुरिन्थुस भेजा था। कुछ समय बाद पौलुस से तीतुस की त्रोआस में भेंट होनी थी। जब पौलुस त्रोआस पहुंचा तब वहां उसे सुसमाचार सुनाने का अवसर मिला। “प्रभु ने उसके लिए द्वार खोला,” पौलुस कहता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सुसमाचार प्रचार का कार्य प्रभु परमेश्वर का काम है। अतएव हमें पवित्र आत्मा पर आश्रित होकर उसी की अगुवाई के अनुसार उन लोगों के पास जाना चाहिए जिनके दिलो-दिमाग को सुसमाचार सुनने एवं उस पर विश्वास करने के लिए उसने तैयार किया है। पौलुस ने कुछ समय तक त्रोआस में शिक्षा दी और जब तीतुस वहां नहीं पहुंचा तब वह व्याकुल मन से मैसीडोनिया जा पहुंचा। अन्ततः वहीं तीतुस और पौलुस की भेंट हुई। तीतुस वहां कुरिन्थुस से आया था – सुखद और दुखद दोनों प्रकार की खबर लेकर। पौलुस की पहली पत्री की शिक्षा पर कुरिन्थुस की मंडली अमल (आचरण) कर रही थी, लेकिन झूठे शिक्षक उस मंडली में पौलुस की सेवकाई को नष्ट करने में प्रयासरत थे।

“परन्तु परमेश्वर का धन्यवाद हो जो मसीह के द्वारा विजयोत्सव के जुलूस में हमारी अगुवाई करता है, और हमारे द्वारा अपने ज्ञान की मधुर सुगन्ध हर जगह फैलाता है। क्योंकि उद्धार पानेवालों और नाशहोने वालों दोनों के लिए परमेश्वर के निमित्त हम मसीह की सुगन्ध हैं” (दू० कुरि०

2:14–15)। यहां पौलुस परमेश्वर को सिर्फ सारी महिमा ही नहीं देता बल्कि प्रत्येक विजय के लिए प्रभु परमेश्वर को धन्यवाद देने का आकांक्षी है। पौलुस की बात बिल्कुल स्पष्ट है – परमेश्वर “हमें ख्रीष्ट की विजय-यात्रा में सदा साथ रखते हैं। हमें सिर्फ ‘मसीह में’ अपनी स्थापना-अवस्था (आत्मिक आशिष या अधिकार) में विश्वासपूर्वक बने रहना है” (१० कुरि० 15:57; रोमि० 8:37)। यहां पौलुस यह भी लिखता है कि मसीही विश्वासीजन प्रत्येक स्थान में प्रभु की सुगन्ध होता है। आत्मा के अनुसार आचरण करने पर जब मसीह के जीवन की हममें और हमारे द्वारा अभिव्यक्ति होती है तब मसीह का प्रेम, अनुग्रह, कोमलता और विनम्रता तमाम लोगों के लिए एक मधुर सुगन्ध साबित होगा।

“अर्थात् एक के निमित्त मरने के लिए मृत्यु की गन्ध और दूसरे के निमित्त जीवन के लिए जीवन की सुगन्ध। भला इन बातों के करने योग्य कौन है? हम तो उन अनेक लोगों के समान नहीं हैं, जो परमेश्वर के वचन में हेराफेरी करते हैं, परन्तु हम मन की सच्चाई से परमेश्वर की ओर से और परमेश्वर की उपस्थिति जानकर मसीह में बोलते हैं” (१० कुरि० 2:16–17)। सुसमाचार को अस्वीकार करने वालों के लिए विश्वासीजन “मृत्यु की गन्ध” है। अविश्वासियों के लिए विश्वासीजन का अस्तित्व उनके पाप एवं अन्धकार की याद होता है। अविश्वासियों ने जैसे मसीह से नफरत की, उसी प्रकार विश्वासियों से भी नफरत करेंगे (यूह० 17:14)। इसके विपरीत (सत्य के) जिज्ञासु लोग सुसमाचार को अपनाते हैं और ऐसे लोगों के लिए विश्वासीजन “जीवन की सुगन्ध” होता है। पौलुस प्रश्न करता है कि भला इस प्रकार की ईश्वरीय सेवा में इस्तेमाल होने योग्य कौन है? हममें से कोई भी मनुष्य परमेश्वर द्वारा इस्तेमाल किए जाने योग्य नहीं है। बहरहाल, जब विश्वासीजन मसीह में प्राप्त अपनी आध्यात्मिक अवस्था में विश्वास-विश्राम करता है अर्थात् इसमें बना रहता है, तब प्रभु परमेश्वर हमें अपनी इच्छानुसार ऐसी सेवा में इस्तेमाल करता है (यूह० 15:5)। कुरिन्थुस के मसीहियों से पौलुस ने यह भी कहा कि वह सांसारिक लाभ के लिए परमेश्वर के वचन की शिक्षा नहीं दे रहा था।

वह तो परमेश्वर की अगुवाई के अनुसार परमेश्वर की सेवा कर रहा था। शारीरिकता में जीवन व्यतीत करने वाला (मसीही) जन प्रायः स्वार्थपूर्ति के लिए परमेश्वर की सेवा करने (का बहाना बनाने) लगता है। परन्तु **आत्मा** के अनुसार जीवन जीने वाले मसीही में परमेश्वर की सेवा के लिए सच्ची व निष्कपट लगन होती है। पौलुस ने कर्म-प्रयास एवं व्यवस्था-पालन जैसी चीजों की मिलावट के द्वारा परमेश्वर के अनुग्रहपूर्ण संदेश में बिगाड़ पैदा करने की कोशिश नहीं की। उसकी सेवा मनुष्य के मनोवेग, इच्छा और मस्तिष्क (प्राण) पर ही केन्द्रित नहीं थी। उसने मनुष्य के मन, इच्छा अथवा भावनाओं (की महसूसियत) को अपनी कोशिश से बदलने का प्रयास नहीं किया। उसकी सेवकाई आत्मिक सेवा थी – लोगों को मसीह की ओर देखने के लिए प्रेरणा प्रदान करना।

“क्या हम फिर अपनी प्रशंसा करने लगे? या अन्य व्यक्तियों की तरह क्या हमें भी तुमसे प्रशंसा-पत्र लेने या तुम्हें देने की आवश्यकता है? हमारा पत्र तो तुम ही हो, जो हमारे हृदय पर लिखा गया है और जिसे सब लोग जानते या पढ़ते हैं, तथा यह प्रकट करते हो कि मसीह का पत्र तुम हो जिनकी हमने देख-भाल की, और जो न स्याही से, न पत्थर की पट्टियाओं पर, परन्तु जीवित परमेश्वर के आत्मा से हृदय-पटल पर लिखा गया है” (दू० कुरि० ३:१-३)। कुरिन्थुस की मंडली से पौलुस यह प्रश्न करता है कि क्या उसे उनके मध्य की गई सेवकाई की प्रामाणिकता प्रस्तुत करने की जरूरत है, या उनके मध्य अपनी सेवकाई की वैधता के बारे में उनसे प्रमाण-पत्र लेना जरूरी है? उत्तर स्पष्ट है – पौलुस को ऐसे किसी प्रमाण की कोई जरूरत नहीं थी। पौलुस कहता है कि कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासियों का जीवन-आचरण (जीवन-शैली) ही उसके तथा उसके सहकर्मियों द्वारा उनके मध्य की गई सेवकाई का जीता-जागता प्रमाण (साक्षी) था। उन लोगों के जीवन-व्यवहार को देख-सुनकर लोगों को पौलुस की मसीही सेवकाई की सकारात्मक साक्षी मिलनी थी (प० थिस्स० १:६-८)। पौलुस और तीतुस को इस्तेमाल करते हुए पिता परमेश्वर ने कुरिन्थुस की मंडली में मसीह का जीवन-संदेश

पहुंचाया ; और जब वे मसीह के साथ क्रूस पर सह-क्रूसित होने की सच्चाई रूपी अपनी आत्मिक अवस्था पर विश्वास-विश्राम करने लगे तब पवित्र आत्मा उनमें ख्रीष्ट-जीवन पुनरुत्पादित (निर्मित) करने लगा (गला0 2:20)। झूठे शिक्षक उन्हें उस व्यवस्था के अधीन करने में लगे थे जो पत्थर पर लिखी गई थी और जिसका पूर्ण पालन कोई मनुष्य नहीं कर सकता था। परन्तु ख्रीष्ट-जीवन को पवित्र आत्मा मनुष्य की अन्तरात्मा (मन, इच्छा, भावना) पर लिखता है, और अन्ततः जैसे-जैसे विश्वासीजन मसीह में लवलीन होता जाता है वैसे-वैसे उसके जीवन के द्वारा ख्रीष्ट-जीवन प्रकट होता है (दू0 कुरि0 3:18)। हमारे जीवन में और हमारे जीवन के द्वारा ख्रीष्ट-जीवन प्रकट होने पर हमारे चहुंओर के लोगों के समक्ष ईश्वरीय अनुग्रह के संदेश की साक्षी प्रकट होती है।

व्यवस्था के अधीन जीवन बिताने वालों में हमारे जीवन की साक्षी तथा व्यवस्था के पूर्ण पालन में उनकी असमर्थता (से उपजी विफलता, कुंठा एवं भग्नाशा) नये सत्य की भूख-प्यास पैदा कर सकती है। कुछ समय पूर्व पास्तरों का एक छोटा सा समूह इस बाइबलीय संदेश का अध्ययन कर रहा था। उसमें से एक युवा पास्तर ने यह गवाही दी : यह अध्ययन पहले दिन मुझे बहुत कठिन लगा। मैं बाइबल स्कूल में पढ़ाई कर चुका हूँ। मैं बाइबल जानता हूँ। लेकिन जो बातें मैंने इस संदेश में देखीं, वह पहले कभी नहीं पढ़ी थीं। जैसे-जैसे मैं इन बातों का अध्ययन करता गया, बाइबल-संदेश के बारे में मेरी अपनी पुरानी विचारधारा जाती रही और परमेश्वर के अनुग्रह सम्बन्धी यह विचारधारा सुस्पष्ट होने लगी। तब मैं इन अनुग्रह विषयक नई सच्चाईयों के प्रति जागरूक होता गया – नतीजतन मैं अपनी पत्नी के साथ शादी के बाद से अब तक जो गलत व्यवहार करता रहा उसमें भी बदलाव आने की आशा चमकने लगी।

“और मसीह के द्वारा, परमेश्वर पर हमें ऐसा ही भरोसा है। यह नहीं कि हम अपने आप में इस योग्य हैं कि समझें कि स्वयं कुछ कर सकते हैं, पर हमारी योग्यता तो परमेश्वर की ओर से है” (दू० कुरि० 3:4-5)। पौलुस ने इससे पूर्व, ख्रीष्ट-जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों को ख्रीष्ट की साक्षी देने वाले, प्रभु में स्थिर विश्वासियों को “मसीह की सुगन्ध” कहा है। अब पौलुस यह स्पष्ट करता है कि ऐसा ख्रीष्ट-जीवन व्यतीत करते हुए दूसरों को प्रभावित करने वाले विश्वासी अपनी किसी योग्यता या सामर्थ्य के कारण ऐसा जीवन नहीं बिताते, बल्कि उन्हें ऐसा जीवन व्यतीत करने की योग्यता (आत्मिक क्षमता या सामर्थ्य) सिर्फ पिता परमेश्वर से मिलती है।

यहां यह स्मरण रखना जरूरी है कि शारीरिकता में ईश्वरीय सेवकाई करने वाले लोग स्वार्थ में सेवा करते हैं, जबकि आत्मा के अधीन प्रभु की सेवा करने वाले विश्वासी परमेश्वर-प्रदत्त पवित्रता व निःस्वार्थ भावना में सेवा करते हैं। शरीर के अनुसार जीवन बिताने वाला विश्वासी उन कार्यों का श्रेय भी स्वयं को देता है जिन्हें सिर्फ परमेश्वर सम्भव या सफल बनाता है। इसके विपरीत प्रभु की आत्मा के अधीन जीवन जीने वाला व्यक्ति समस्त कार्यों का सच्चा श्रेय सिर्फ प्रभु परमेश्वर को देता है जो हमारे सम्पूर्ण जीवन का सर्वोच्च आधार-स्रोत है।

“जिसने हमें नई वाचा के सेवक होने के योग्य बनाया, अक्षर की वाचा नहीं परन्तु आत्मा की, क्योंकि अक्षर तो मारता है, परन्तु आत्मा

जिलाता है” (दू० कुरि० ३:६)। यहां फिर झूठे शिक्षकों द्वारा प्रचारित व्यवस्था तथा पौलुस द्वारा प्रचारित अनुग्रह-संदेश में विषमता को दर्शाया गया है। पौलुस कहता है कि परमेश्वर और मनुष्य के मध्य स्थापित नई वाचा (ईश्वरीय प्रबन्ध) की सेवकाई की योग्यता उन्हें प्रभु परमेश्वर ने ही दी है (प० तीमु० १:१२)। यह नई ईश्वरीय वाचा (प्रबन्ध या योजना) व्यवस्था पर आधारित नहीं है, क्योंकि व्यवस्था तो व्यवस्था के पूर्ण पालन में असमर्थ मानव को सिर्फ दोषी ठहराती है। इसके बजाय नई वाचा का आधार (पवित्र) **आत्मा** है जो विश्वासी के जीवन में ख्रीष्ट-जीवन को पुनरुत्पादित (निर्मित) करता है, और उसमें ख्रीष्ट-जीवन जीने की क्षमता (सामर्थ्य एवं सुइच्छा) प्रदान करता है।

“परन्तु यदि मृत्यु की वह वाचा जिसके अक्षर पत्थर के पटलों पर अंकित हैं, इतने तेजस्वी रूप में आई कि इस्राएल की संतान भी मूसा के चेहरे के तेज को, जो घटता जा रहा था, एकटक होकर न देख सकी, तो फिर आत्मा की वाचा और अधिक तेजोमय क्यों न होगी” (दू० कुरि० ३:७-८)? यहां पवित्र बाइबल के पुराना नियम की **निर्गमन** नामक पुस्तक के चौतीसवें अध्याय की बातों की ओर इशारा किया गया है – “अतः मूसा वहां यहोवा के साथ चालीस दिन और चालीस रात रहा, उसने न तो रोटी खाई और न पानी पिया। और उसने उन पट्टियाओं पर वाचा के वचन अर्थात् दस आज्ञाएं लिख लीं, और ऐसा हुआ कि जब मूसा सीनै पर्वत से नीचे उतर रहा था और पर्वत से नीचे उतरते समय साक्षी की दोनों पट्टियाएं मूसा के हाथ में थीं, उसे नहीं मालूम था कि परमेश्वर के साथ बातें करने के कारण उसके चेहरे से किरणें निकल रही थीं। अतः जब हारुन और सब इस्राएलियों ने मूसा को देखा कि उसके चेहरे से किरणें निकल रही हैं, तो वे उसके पास आने से डरे। तब मूसा

ने उनको बुलाया और हारुन तथा मंडली के सब प्रधान उसके पास लौटे और मूसा ने उनसे बातें कीं। इसके बाद सब इस्राएली पास आए और उसने उन्हें वह सब कुछ करने की आज्ञा दी जिसके लिए यहोवा ने सीनै पर्वत पर उस से कहा था। जब मूसा उनसे बातें कर चुका तो उसने अपने मुंह पर ओढ़ना डाल लिया। परन्तु जब मूसा परमेश्वर की उपस्थिति में उस से बातें करने जाता था तो वह बाहर निकलने तक ओढ़ने को उतारे रहता था; और जब जब वह बाहर आकर मिली हुई आज्ञा के अनुसार इस्राएलियों से बोलता था तब इस्राएली मूसा के चेहरे को देखते थे कि उसके चेहरे से किरणें निकल रही हैं। अतः जब तक मूसा यहोवा से बातें करने भीतर न जाता तब तक वह अपने चेहरे पर ओढ़ना डाले रहता था” (निर्गो 34:28-35)।

दूसरा कुरिन्थियों के उपर्युक्त पदों में व्यवस्था को पौलुस “मृत्युजनक विधान” या “मृत्यु की वाचा” कहता है, क्योंकि व्यवस्था का पूर्ण पालन असम्भव है और इस कारण व्यवस्था के अनुसार सब लोग दोष-दंड के भागीदार हैं। परन्तु सबको दोषी (मृत्यु दंड के योग्य) ठहराने वाली व्यवस्था भी महिमामय एवं तेजस्वी थी; क्योंकि इसके द्वारा परमेश्वर की सामर्थ्य, परमेश्वर की पवित्रता तथा पाप के प्रति ईश्वरीय घृणा एवं पाप के लिए ईश्वरीय दंड-विधान (आंशिक तौर पर ईश्वरीय महिमा) प्रदर्शित हुआ।

रोचक है कि व्यवस्था पाने के बाद मूसा जब (परमेश्वर की उपस्थिति) से वापस लौटा तब ‘उसके चेहरे से ऐसी तेज किरणें निकल रही थीं’ कि इस्राएली लोग उसके चेहरे को देख नहीं सकते थे, और उसे अपने चेहरे को ढकना पड़ा। बहरहाल, धीरे-धीरे मूसा के चेहरे का वह (अस्थायी) तेज जाता रहा। पौलुस कहता है कि यह घटना व्यवस्था

के उद्देश्य की एक तस्वीर पेश करती है। अतः पौलुस कहता है कि “नयी वाचा” व्यवस्था (बन्धन के प्रचार) से महान है। व्यवस्था मनुष्यों को “नई वाचा” के आगमन हेतु तैयार करने के उद्देश्य से दी गई थी और नई वाचा का आगमन मसीह में संपन्न हुआ। (गला० ३:२२-२६; ४:१-६)।

“क्योंकि जब दोषी ठहराने वाली वाचा तेजोमय है, तो धर्मि ठहराने वाली वाचा और भी अधिक तेजोमय है” (दू० कुरि० ३:९)। पौलुस यह कहता है कि जब दोष, दंड और मृत्यु प्रदान करने वाली पुरानी वाचा (व्यवस्था) ने भी परमेश्वर की महिमा को दर्शाया, तब तो उद्धार एवं जीवन प्रदान करने वाली “नई वाचा” बेहद महिमापूर्ण है। *“वास्तव में वह जो तेजोमय था अब उस तेज के सम्मुख जो उससे बढ़कर तेजोमय है, निस्तेज हो गया, क्योंकि यदि वह क्षीण होने वाला तेजोमय था, तो वह जो स्थिर है और भी अधिक तेजोमय है”* (दू० कुरि० ३:१०-११)। कुछेक बत्तियां रात में बहुत तेज रोशनी देती (प्रतीत होती) हैं। लेकिन सूर्य की रोशनी प्रकट होने पर अन्य सभी बत्तियां धुंधली पड़ जाती हैं; क्योंकि सूर्य की रोशनी सबसे तेज रोशनी (बत्ती) से भी महान है। *“ऐसी आशा होने के कारण हम बड़े साहस से बोलते हैं, और हम मूसा के सदृश नहीं जो अपने चेहरे पर परदा डाले रहता था कि इस्राएल की संतान एकटक होकर उस लोप होते हुए तेज के अन्त को न देख सके”* (दू० कुरि० ३:१२-१३)। इन पदों के द्वारा भी व्यवस्था और अनुग्रह में भिन्नता सुस्पष्ट है।

“इसलिए जब हम पर ऐसी दया हुई कि हमें यह सेवा मिली, तो हम साहस नहीं खोते। परन्तु हमने लज्जा के गुप्त कार्यों को त्याग दिया है और धूर्तता से नहीं चलते, न परमेश्वर के वचन में मिलावट करते हैं। परन्तु सत्य को प्रकट करने के द्वारा हम, परमेश्वर के सम्मुख प्रत्येक मनुष्य के विवेक में अपने आप को भला ठहराते हैं” (दू० कुरि० 4:1-2)। पौलुस की सेवकाई के दौरान प्रायः उसे उन लोगों द्वारा सताया गया जो यहूदी रीति-विधियों एवं यहूदीकरण के कट्टर समर्थक थे (प्रेरित० 9:23 ; 13:45 , 50 ; 14:12 , 19 ; 16:22 , 23 ; 17:5 , 13 ; 18:6 , 12 ; 20:3 , 19 ; 21:27 ; 22:22 ; 23:12 ; 25:7)। परमेश्वर के वचन की शिक्षा देने एवं ख्रीष्टीय जीवन व्यतीत करने की सेवकाई उसे प्रभु परमेश्वर के अनुग्रह एवं दया द्वारा प्राप्त हुई थी। इसीलिए, यद्यपि पौलुस और उसके सहयोगी उत्पीड़ित किए गये, उन पर आक्रमण किए गये और उन्होंने बहुतों को सत्य से बहकते हुए भी देखा; तथापि प्रभु परमेश्वर पर भरोसा रखना नहीं छोड़े जिसने उन्हें यह सेवकाई सौंपी थी और न ही साहस (हियाव) खोए। चूंकि वे यह जानते थे कि उनकी सेवकाई परमेश्वर की ओर से है इसलिए लोगों को अपनी ओर खींचने के लिए उन्होंने किसी प्रकार के छल-कपट व चालाकी का सहारा नहीं लिया। उन्होंने सिर्फ सत्य का प्रचार किया और शेष कार्य (फल, परिणाम या सफलता) को पवित्र आत्मा के भरोसे छोड़ दिया।

“यदि हमारे सुसमाचार पर परदा पड़ा है तो यह परदा उनके लिए पड़ा है जिनका विनाश हो रहा है। उन अविश्वासियों की बुद्धि को इस संसार के ईश्वर ने अन्धा कर दिया है कि वे परमेश्वर के प्रतिरूप अर्थात् मसीह के तेजोमय सुसमाचार की ज्योति को, न देख सकें”। (दू0 कुरि0 4:3-4)। पौलुस लिखता है कि यद्यपि उसने सुसमाचार को सुस्पष्ट एवं सरल रूप में प्रचारित किया, तब भी सुसमाचार की सच्चाई पर विश्वास नहीं करने वालों के लिए परदा पड़ा है। शैतान अपने धूर्ततापूर्ण झूठ के द्वारा संसार को भ्रमित करने में लगा हुआ है। वह जबरदस्ती किसी चीज को किसी पर थोप नहीं सकता; लेकिन (शैतान) हमारी शारीरिकता के माध्यम से अपना झूठ-फरेब इस्तेमाल करना चाहता है। जब हम उसके झूठ-फरेब पर विश्वास करते हैं तब वह हमारे ऊपर अपना प्रभाव एवं नियंत्रण दिखाता है। विभिन्न लोगों एवं संस्कृतियों में वह विभिन्न तरीके से लोगों को भरमाता है और इस प्रकार अपने झूठ-फरेब से लोगों को सुसमाचार पर विश्वास करने से दूर रखता है। कहीं पैसा, कहीं धन-सम्पदा, कहीं मान-सम्मान के जाल-फरेब से और कहीं भूत-प्रेत के भय-जाल से लोगों को सुसमाचार से दूर रखता है।

शैतान के झूठ-फरेब एवं धोखेबाजी पर हम अपने बल व बुद्धि से विजयी नहीं हो सकते। मसीह का सुसमाचार ही इसका समाधान है – “उद्धार के निमित्त परमेश्वर की सामर्थ्य” (रोमि0 1:16)। अतएव हमें सुसमाचार के शुद्ध एवं सरल संदेश का ही प्रचार करना है और पवित्र आत्मा पर भरोसा रखना है कि वह अपने द्वारा तैयार किए गये लोगों के जीवन में इस संदेश द्वारा अपना काम करेगा। जब कोई व्यक्ति इस संदेश पर विश्वास करने के द्वारा उद्धार पाता है तो शैतान की अगली चाल (धूर्तता) यह होती है कि विश्वासीजन ‘मसीह के साथ अपनी आत्मिक पहचान या एकता’ को जानने, समझने व मानने से दूर रहे;

और पवित्रीकरण (आत्मिक उन्नति) के लिए स्व-प्रयास, स्वकर्म या सुकर्मों पर निर्भर रहे।

“हम तो अपना नहीं परन्तु यीशु मसीह का प्रचार करते हैं कि वह प्रभु है, और अपने विषय में यह कहते हैं कि हम यीशु के कारण तुम्हारे दास हैं, क्योंकि परमेश्वर जिसने कहा, ‘अन्धकार में से ज्योति चमके’, वही है जो हमारे हृदयों में चमका है कि हमें मसीह के चेहरे में परमेश्वर की महिमा के ज्ञान की ज्योति दे। परन्तु हम मिट्टी के पात्रों में, यह धन इसलिए रखा हुआ है कि सामर्थ्य की असीम महानता हमारी ओर से नहीं वरन् परमेश्वर की ओर से ठहरे” (दू० कुरि० 4:5-7)। शुद्ध एवं सरल ख्रीष्टीय सुसमाचार-प्रचार के प्रयोजन पर ध्यान दें : पौलुस की बात का भावार्थ यह है कि मसीह द्वारा पूर्णरूपेण सम्पन्न किया गया उद्धार-कार्य ही सुसमाचार है, न कि मनुष्य द्वारा किया गया (अथवा किया जाने वाला) कार्य। जब हम मसीह तथा उसके द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार-कार्य का प्रचार करते हैं तो सत्य का प्रचार करते हैं; चाहे कोई इस पर विश्वास करे या न करे। मसीह द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार-कार्य रूपी सुसमाचारीय सत्य पर हमारे बल, बुद्धि एवं वाक्पटुता के ज़ोर-शोर (व सहारे) से लोग विश्वास नहीं करेंगे (प० कुरि० 2:1-5)। प्रभु परमेश्वर ने ही सृष्टि के प्रारम्भ में अन्धकार में से ज्योति को प्रकट होने का आदेश दिया; और आज भी वही हमारे इन पतित शरीरों में सुसमाचार की ज्योति चमकाने देता है। जैसे उसने हमारे हृदय में अपने सुसमाचार को प्रकाशित (प्रकट) किया, वैसे ही वह दूसरे भटके हुए लोगों के जीवन में भी अपना काम करेगा। अतः (इस काम के लिए) हमारा भरोसा प्रभु पर होना चाहिए न कि अपने ऊपर। इस प्रकार काम करने के ईश्वरीय उद्देश्य पर ध्यान दें (देखें: सातवां पद)। ऐसा इसलिए है ताकि यह निःसंदेह रूप में स्पष्ट रहे कि यह संदेश परमेश्वर की ओर से है, हमारी ओर से नहीं।

पापी मनुष्यों को उद्धार प्रदान करके, उन्हें संसार के समक्ष 'अपने पुत्र' के जीवन की साक्षी होने के लिए इस्तेमाल करने (का आत्मिक कार्य करने) वाला प्रभु परमेश्वर ही है। यह सच्चाई इस बात का सच्चा प्रमाण है कि सुसमाचार-संदेश परमेश्वर की ओर से है और उसका पवित्र आत्मा ही इसे लोगों के दिलो-दिमाग (जीवन) में कार्यकारी बनाता है। यदि पिता परमेश्वर इस संदेश को प्रचारित करने के लिए स्वर्गदूतों का इस्तेमाल करता, तब तो लोगों की दृष्टि सुसमाचार-संदेश से ज्यादा संदेशवाहकों पर लगी रहती। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि प्रभु परमेश्वर ने हम "मिट्टी के पात्रों" को सुसमाचार (रूपी धन) के प्रचार के लिए चुना है जिससे कि लोगों की दृष्टि (इस आध्यात्मिक या स्वर्गिक) धन की असीम महानता पर लगी रहे।

"हम चारों ओर से क्लेश सहते हैं परन्तु मिटाए नहीं जाते; निरुपाय तो हैं, परन्तु निराश नहीं होते; सताए तो जाते हैं, परन्तु त्यागे नहीं जाते; गिराए तो जाते हैं, परन्तु नष्ट नहीं होते। हम यीशु की मृत्यु को सदा अपनी देह में लिए फिरते हैं कि यीशु का जीवन हमारी देह में प्रकट हो। हम जो जी रहे हैं, सर्वदा यीशु के कारण मृत्यु के हाथों सौंपे जाते हैं कि यीशु का जीवन भी हमारे मरणशील शरीर में प्रकट हो। इस प्रकार मृत्यु तो हम में, पर जीवन तुम में कार्य करता है" (दू० कुरि० 4:8-12)। जैसा कि पौलुस कहता है, परमेश्वर ने हम "मिट्टी के पात्रों" को सुसमाचार रूपी "धन" ढोने (वहन करने) के लिए चुन रखा है। उद्धार-प्राप्ति के समय हम में से प्रत्येक विश्वासी को एक नया स्वभाव मिला (दू० कुरि० 5:17)। यद्यपि अब हम एक नई आध्यात्मिक अवस्था (हैसियत, स्थिति या स्थान; अर्थात् आदम में नहीं बल्कि मसीह) में हैं और एक नया स्वभाव पाए हैं, तथापि अगर परमेश्वर इन बाइबल पदों

(8-12) में वर्णित प्रक्रिया से होकर हमें नहीं ले जाता, तो हमारे जीवन द्वारा उसका उपर्युक्त "धन" और स्वभाव प्रतिबिम्बित नहीं होगा, बल्कि हममें छिपा (अविकसित) रहेगा। अतः प्रभु परमेश्वर हमें परीक्षाकारी (दुष्कर, थकाऊ, मुश्किल) परिस्थितियों से होकर ले जाता है ताकि हमारी शारीरिकता (पुराना आदम या पाप-स्वभाव) की दुष्टता, अयोग्यता व निकम्मापन बेपर्दा हो। अपनी शारीरिकता के इस निकम्मेपन को हम जितना ही अधिक जानते-पहचानते हैं, उतना ही अधिक 'मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह-क्रूसित होने' की सच्चाई को अपनाते हैं। इसके परिणामस्वरूप हम शारीरिकता के नियंत्रण से छूटते जाते हैं और **आत्मा** के चलाए जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता व योग्यता में विकसित होते हैं। इस प्रकार ख्रीष्ट जीवन के प्रकटन की साक्षी होने की ओर बढ़ते जाते हैं।

"हम यीशु की मृत्यु को (अर्थात्, उसके साथ क्रूस पर हमारे पुराने मनुष्यत्व के स्वार्थ, अहंकार व मिथ्याभिमान की मृत्यु को) सदा अपनी देह में लिए फिरते हैं कि यीशु का जीवन हमारी देह में प्रकट हो। हम जो जी रहे हैं, सर्वदा यीशु के कारण (पुराने मनुष्यत्व की स्वार्थपरकता की मृत्यु को पहचानते रहने के लिए) मृत्यु के हाथों सौंपे जाते हैं कि यीशु का जीवन भी हमारे मरणशील शरीर में प्रकट हो। इस प्रकार (स्वार्थ एवं अहंकार की) मृत्यु तो हम में, पर जीवन तुम में कार्य करता है"। इसी को 'मृत्यु एवं पुनरुत्थान' का सिद्धान्त कहा जाता है, जो कि सम्पूर्ण बाइबल में सुस्पष्ट है। इसी प्रसंग में प्रभु यीशु ने कहा कि "जब तक गेहूं का दाना भूमि पर गिरकर मर नहीं जाता, तब तक अकेला रहता है" (यूह0 12:24)। बाइबल की बातों का भावार्थ एक ही है, इनकी व्यवहार्यता या उपयोगिता अनेक हो सकती है। प्रभु यीशु द्वारा

कहे गए उपर्युक्त शब्द जमीन में बीज पड़ने, सड़ने और अन्ततः नया फल देने के लिए मरने के विषय में है। उसने अपने जीवन के विषय में यह कहा कि हमें अनन्त जीवन देने के लिए उसका मरना अत्यावश्यक था। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त बाइबेल पद विश्वासियों को स्वार्थ के प्रति मरने की बात करता है। जब हम अपने स्वार्थ एवं अहंकार के प्रति मरे हुए होते हैं तभी हमारे द्वारा दूसरों को जीवनप्रद सच्ची आशीष मिलती है।

“लिखा है : ‘मैंने विश्वास किया, इसलिए मैं बोला’। इसलिए कि विश्वास की वही आत्मा हम में है, हम भी विश्वास करते हैं और इसलिए बोलते हैं, तथा यह जानते हैं कि जिसने प्रभु यीशु को जिलाया, वही हमें भी यीशु के साथ जिलाएगा, और हमें भी तुम्हारे साथ अपने सम्मुख उपस्थित करेगा” (दू0 कुरि0 4:13-14)। यहां पौलुस की बात का भावार्थ यह है कि परमेश्वर ने उसे तमाम कठिनाईयों एवं आजमाइशों से होकर गुजरने दिया ताकि वह जीवन की नई चाल में चलने के लिए जिलाया जाय (रोमि0 6:4-5)। जैसे हम उसके साथ सह-क्रूसित किए गये, वैसे ही उसके साथ पुनः जीवित किए गये हैं ताकि उसके समान (जीवन की नई चाल में) चल सकें (प0 यूह0 2:6)।

“क्योंकि सब वस्तुएं तुम्हारे लिए हैं कि अनुग्रह जो अधिक से अधिक लोगों में फैलता जा रहा है, परमेश्वर की महिमा के लिए धन्यवाद की वृद्धि का कारण बन सके। इसलिए हम साहस नहीं खोते, यद्यपि हमारे बाहरी मनुष्यत्व का क्षय होता जा रहा है, तथापि हमारे आन्तरिक मनुष्यत्व का दिन-प्रतिदिन नवीनीकरण होता जा रहा है। क्योंकि हमारा पल भर का यह हल्का सा क्लेश एक ऐसी चिरस्थायी महिमा उत्पन्न कर रहा है जो अतुल्य है। हमारी दृष्टि उन वस्तुओं पर नहीं जो दिखाई देती

हैं, पर उन वस्तुओं पर है जो अदृश्य हैं, क्योंकि दिखाई देने वाली वस्तुएं तो अल्पकालिक हैं, परन्तु अदृश्य वस्तुएं चिरस्थायी हैं” (दू० कुरि० 4:15-18)। अपनी बात को सुस्पष्ट करते हुए पौलुस कहता है कि इस (मृत्यु एवं पुनरुत्थान के सिद्धान्त रूपी) कठिन आध्यात्मिक प्रक्रिया का उद्देश्य हमें परमेश्वर के अनुग्रह के सुयोग्य सेवक बनाना है; और जब ऐसा होता है तब परमेश्वर के महिमार्थ उसके प्रति धन्यवाद की ओर वृद्धि होती है। इसीलिए पौलुस इस पीड़ादायी प्रक्रिया से निराश नहीं हुआ। यद्यपि उसका बाहरी मनुष्यत्व क्षीण होता जा रहा था किन्तु आत्मा के अधीन जीवन बिताना सीखते हुए उसके आन्तरिक जीवन में आध्यात्मिक विकास हो रहा था। बेशक, उसने अपने कष्टों व कठिनाइयों को माना, लेकिन वह इस सच्चाई को अच्छी तरह समझता था कि अनन्तकालीन आशीषों की तुलना में यह कठिनाइयां क्षणिक व नगण्य हैं। यदि इहलौकिक जीवन में विश्वासीजन के ज्यादा दुःख-दर्द से उसमें खींच-खींच-स्वभाव विकसित होता है और उसकी जीवन-साक्षी से दूसरों को आध्यात्मिक लाभ पहुंचाता है, तो ऐसे दुःख-दर्द (कठिनाइयां) हितकर, उत्तम एवं महत्वपूर्ण हैं। अतः पौलुस कहता है कि विश्वासियों की दृष्टि इस जीवन की दृश्यमान वस्तुओं पर नहीं, बल्कि अनन्त एवं चिरस्थायी मूल्य की (आध्यात्मिक) आशीषों पर होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शारीरिकता में हमारी दृष्टि इहलौकिक एवं अस्थायी चीजों पर लगी रहती है, जबकि **आत्मा** के चलाए जाने पर शाश्वत् एवं स्वर्गिक वस्तुओं पर (कुलु० 3:1-3)।

“क्योंकि हम जानते हैं कि यदि हमारा पृथ्वी पर का तम्बू सृदश घर गिरा दिया जाय तो परमेश्वर से हमें स्वर्ग में ऐसा भवन मिलेगा जो हाथों से बना हुआ नहीं, परन्तु चिरस्थायी है। क्योंकि इस घर में तो हम कराहते और लालसा रखते हैं कि अपने स्वर्गीय भवन को पहिन लें और इसे पहिन कर हम नंगे न पाए जाएं” (दू० कुरि० ५:१-३)। अपनी सेवकाई के दौरान संत पौलुस को बहुत सी कठिनाईयाँ एवं उत्पीड़न सहना पड़ा। बहरहाल, इन कठिनाईयों और समस्याओं से बचने के उपायों पर उसने आस नहीं लगायी। इसके बजाय वह अपने उद्धारकर्ता प्रभु परमेश्वर पर विश्वासपूर्ण भरोसा करता रहा। वह इस सच्चाई को भलीभांति समझता था कि जब तक वह अपने पतित शरीर में है, तब तक जीवन में कठिनाईयाँ आएंगी, लेकिन वह दिन भी आने वाला है जबकि वह प्रभु के पास होगा और इस पार्थिव शरीर से मुक्त होगा। पौलुस की तरह, हम भी जब तक इस पृथ्वी पर हैं, तब तक दुःख-दर्द एवं कठिनाईयों का सामना करना होगा। दुःख-बीमारी से हमारा यह पार्थिव शरीर क्षीणता, बिगाड़ व जर्जरता का शिकार हो रहा है। बहरहाल, पौलुस की तरह हमें भी इस सच्चाई पर पूरा भरोसा है कि एक दिन प्रभु की ओर से हमें एक नई स्वर्गिक देह मिलेगी। अतः पौलुस की आशा मसीह यीशु पर केन्द्रित थी, न कि इस जीवन में बेहतर हालात की तलाश पर।

“सचमुच, जब तक हम इस तम्बू में हैं तो बोज़ से दबे हुए कराहते हैं, क्योंकि हम वस्त्र उतारना नहीं, वरन् पहिनना चाहते हैं कि

जो कुछ मरणशील है, वह जीवन द्वारा निगल लिया जाय" (दु0 कुरि 5:4)। पौलुस कहता है कि जब तक हम इस पार्थिव शरीर में हैं तब तक "बोझ से दबे हुए कराहते हैं", ताकि इससे स्वतंत्र हो सकें। इसका मतलब यह नहीं कि हम झटपट मृत्यु चाहते हैं। बल्कि सच्चाई यह है कि विश्वासीजन स्वभावतः अपने स्वर्गिक पिता के पास होने तथा नये स्वर्गिक देह में होने की आकांक्षा रखता है।

"अब जिसने हमें इसी अभिप्राय के लिए तैयार किया है, वह परमेश्वर है। उसने हमें बयाने में आत्मा दिया है" (दु0 कुरि0 5:5)। पौलुस विश्वासियों से कहता है कि उनका पार्थिव शरीर नष्ट होने पर उन्हें एक नया एवं स्वर्गिक शरीर मिलेगा। क्यों? क्योंकि पिता परमेश्वर ने अपने अनुग्रह द्वारा हमें इस योग्य बनाया है। परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा हम उस चीज को ग्रहण करने योग्य बनाए गये हैं जिसके लिए हम बिल्कुल अयोग्य थे। इसके लिए हम परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा योग्य मात्र ही नहीं ठहराए गये हैं, बल्कि (इसी बीच के समय में) उसने हमें अपना पवित्र आत्मा भी प्रदान किया है जो इस सच्चाई की गारन्टी है कि परमेश्वर द्वारा प्रतिज्ञात् उपर्युक्त आशिष अवश्य प्राप्त होगी।

"इसलिए हम सदा साहस रखते और यह जानते हैं कि जब तक हम देह रूपी घर में रहते हैं, प्रभु से दूर हैं – क्योंकि हम रूप देखकर नहीं, पर विश्वास से चलते हैं – अतः हम पूर्णतः साहस रखते हैं तथा देह से अलग होकर प्रभु के साथ रहना और भी उत्तम समझते हैं" (दु0 कुरि0 5:6–8)। प्रभु परमेश्वर की ओर से हमें एक नई स्वर्गिक देह दिये जाने का वायदा किया गया है और अपने अनुग्रह से उसने हमें उस आशिष को पाने योग्य भी बनाया है। इतना ही नहीं, बल्कि उसने इस आशिष–प्राप्ति की सुनिश्चयता के प्रमाण व गारन्टी (बयाने) के रूप में हमें अपना पवित्र आत्मा प्रदान किया है। अतः पौलुस कहता है कि

कठिनतम् परिस्थितियों में भी हम अपना हियाव (उत्साह एवं आशा) नहीं खोते। क्योंकि हमारी दृष्टि परमेश्वर के वायदे तथा उससे प्राप्त शाश्वत आशा पर लगी रहनी है, न कि इहलौकिक एवं अस्थायी चीजों पर। हां, शारीरकता का जीवन व्यतीत करने पर हमारी नज़र सिर्फ अपने स्वार्थ-सिद्धि पर तथा इस संसार की चीजों पर लगी रहती है। ऐसे शारीरक जीवन की कठिन परिस्थितियों में हम परेशान व निराश होते हैं तथा सुखद हालात में खुश। इसके विपरीत, **आत्मा** के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर हम सुखद एवं दुःखद अर्थात् सभी प्रकार की परिस्थितियों में प्रोत्साहित, आशान्वित एवं हियावपूर्ण (साहसपूर्ण) रहते हैं, क्योंकि हमारी आशा का केन्द्र-बिन्दु मसीह तथा उसके द्वारा संपन्न किया गया उद्धार-कार्य है। इस प्रसंग में पौलुस यह भी कहता है कि वह इस "देह से अलग होकर, प्रभु के साथ रहना और उत्तम" समझता है। पौलुस यह लिखते समय अपनी पार्थिव देह में ही (जीवित) था, परन्तु प्रभु के पास जाने से भयभीत होने के बजाय (उपर्युक्त) ईश्वरीय वायदे में प्रोत्साहित व आशान्वित था।

"इसलिए हमारी अभिलाषा यह है, चाहे साथ रहें या अलग रहें हम उसे प्रिय लगते रहें। क्योंकि हम सब को मसीह के न्याय-आसन के समक्ष उपस्थित होना अवश्य है कि प्रत्येक को अपने भले या बुरे कामों का बदला मिले जो उसने देह के द्वारा किए" (दू० कुरि० ५:९-१०)। यहां पौलुस अपनी ऐसी जीवन-शैली की प्रेरणा का एक अन्य कारण बताता है जिसकी वजह से वह कठिनाईयों के बावजूद भी निराश या हताश नहीं था। वह कहता है कि चाहे वह अपने पार्थिव जीवन में हो या प्रभु की इच्छानुसार उसके पास उठा लिया जाय, पौलुस की आकांक्षा यह थी कि उसका जीवन (आचरण) "प्रभु को प्रिय लगे"। एक दिन हम सब "मसीह के न्याय-आसन के समक्ष" खड़े होंगे जहां हमें हमारे कामों का

प्रतिफल मिलेगा (प0 कुरि0 3:10-15)। क्या यह न्याय इस बात के लिए होगा कि हमारे काम हमें स्वर्ग में ले जाने के लायक हैं या नहीं? नहीं! यह न्याय-आसन इस उद्देश्य के लिए नहीं होगा। इस न्याय के समय यह फैसला किया जाएगा कि मसीही विश्वासीजन ने अपने पार्थिव जीवन का कौन सा कार्य-व्यवहार परमेश्वर के अनुग्रह में विश्वास के द्वारा पवित्र आत्मा की सामर्थ्य में किया और कौन सा काम अपनी शारीरिकता (पुराना मनुष्यत्व या पाप-स्वभाव) के बल, बुद्धि व कर्म-प्रयास में। हमारे जीवन में जो कुछ प्रभु यीशु मसीह ने किया, सिर्फ वही पिता परमेश्वर को प्रिय लगेगा।

“अतः हम प्रभु का भय मानते हुए लोगों को समझाते हैं, परन्तु हमारी दशा परमेश्वर के सामने खुली है, और मैं आशा करता हूँ कि हमारी यह दशा तुम्हारे विवेक में भी खुली है” (दू0 कुरि0 5:11)। चूंकि एक दिन ऐसा आने वाला है जबकि हमारे कामों का न्याय होगा, इसलिए हमें दूसरों की भी सत्य में अगुवाई करनी चाहिए। हमारे सभी सेवा-कार्यों के पीछे वास्तविक नीयत, भावना या मंशा को प्रभु परमेश्वर जानता है। कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासी यह अच्छी तरह जानते थे कि उनके मध्य पौलुस द्वारा की गई सेवकाई शारीरिक प्रेरणा व महत्वाकांक्षा से नहीं, बल्कि पवित्र आत्मा की अगुवाई में की गई थी। प्रायः हम अपनी शारीरिकता की शक्ति में सेवकाई करने लगते हैं। अक्सर हमें ऐसी सेवा में सफलता भी नजर आती है। जैसे कि जरूरतमन्दों की भलाई होना और यहां तक कि लोगों का प्रभु की ओर आना। बहरहाल, इन सब सफलताओं के बावजूद परमेश्वर हमारे हृदय की नीयत-भावना को भली-भांति जानता है। यदि हम शारीरिकता के अनुसार चल रहे हैं तो हमारा प्रेरणा उद्देश्य सिर्फ स्वार्थ-सिद्धि ही होगा और यह परमेश्वर के समक्ष अप्रिय है।

“हम फिर अपनी प्रशंसा तुम्हारे सामने नहीं कर रहे हैं, परन्तु तुम्हें अवसर दे रहे हैं कि हम पर गर्व करो, और उन्हें उत्तर दे सको जो मन पर नहीं पर दिखावे पर घमंड करते हैं। क्योंकि यदि हम बेसुध हैं तो परमेश्वर के लिए, और यदि चैतन्य हैं तो तुम्हारे लिए हैं” (दू० कुरि० 5:12-13)। पौलुस द्वारा प्रचार की गई ईश्वरीय अनुग्रह पर केन्द्रित शिक्षा का उन भ्रामक शिक्षकों द्वारा अक्सर विरोध किया गया जो व्यवस्था-बन्धन और यहूदीकरण के समर्थक (प्रचारक) थे। यहां पौलुस की बातों के पीछे उसका अहम्मान या अपनी बड़ाई करने की भावना नहीं पायी जाती; बल्कि वह तो कुरिन्थुस के विश्वासियों को यह बता रहा था कि उसने तथा उसके सहकर्मियों ने उनके मध्य जो सेवा की उसका आधार था – मसीह पर विश्वास-भरोसा और प्रभु परमेश्वर को प्रिय सेवा-भावना। कुरिन्थुस के विश्वासियों को व्यवस्था-बंधन (यहूदीकरण) की ओर खींचने वाले भ्रामक शिक्षक सिर्फ दिखावे (पाखंड) पर अहंकार करने वाले लोग थे। ऐसे लोग सिर्फ स्व-सम्मान, स्वार्थ-सिद्धि और स्व-प्रशंसा को ही बढ़ावा देने वाले थे। वे ऐसे गुणों का बाहरी दिखावा कर रहे थे जो उनके दिलो-दिमाग से मीलों दूर थे। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि पौलुस यह कहता है कि यदि उसे ‘बेसुध या पागल’ कहा जा रहा है तो यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि वह परमेश्वर के समक्ष प्रिय शिक्षा-सेवा में पागल है; और यदि उसकी शिक्षा सत्य (के अनुसार) है, तो इसमें कुरिन्थुस के विश्वासियों की मंडली की ही भलाई है (दू० कुरि० 4:5)।

“इसलिए अब से हम किसी मनुष्य को शरीर के अनुसार न समझेंगे। यद्यपि हमने मसीह को भी शरीर के अनुसार जाना है तथापि अब से हम उसे ऐसा नहीं जानते। इसलिए यदि कोई मसीह में है तो वह नई सृष्टि है। पुरानी बातें बीत गईं। देखो, नई बातें आ गयी हैं” (दू० कुरि० 5:16-17)। यहां इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है

कि (शारीरकता के बजाय) **आत्मा** के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले विश्वासियों का एक-दूसरे के प्रति एक नया दृष्टिकोण होता है – अर्थात् अपनी शारीरकता द्वारा एक दूसरे की शारीरकता को देखने के बजाय, अब वे एक-दूसरे को **आत्मा** के अनुसार (आत्मा की दृष्टि से) जानने-समझने लगते हैं। **आत्मा** के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले विश्वासियों के विचार एवं भावनाएं एक-दूसरे के शारीरिक क्रिया-कलापों व मनोवृत्तियों द्वारा नियंत्रित नहीं होते। पौलुस लिखता है – “यद्यपि हमने मसीह को भी शरीर के अनुसार जाना था तथापि अब से हम उसे ऐसा नहीं जानते।” हममें से अधिकतर लोग किसी न किसी शारीरिक नीयत-भावना से प्रभु यीशु के पास आए। उदाहरणार्थ, नरक से बचने की नीयत-भावना लेकर। उद्धार पाने के बाद भी प्रायः लोग प्रभु के समक्ष स्वार्थ-केन्द्रित जीवन व्यतीत करते रहते हैं – सुखद परिस्थितियों, अच्छी नौकरी, घर-जमीन, अच्छे स्वास्थ्य एवं अपनी संतानों की तरक्की इत्यादि के लिए दुआ करते रहते हैं। इस प्रकार प्रभु के साथ हमारी संगति शारीरकता के रंग में रंगी रहती है। बहरहाल इसके बावजूद भी “**आत्मा** में” हमारा मन ईश्वरीय बातों पर चिन्तन करता है, ईश्वरीय इच्छा का आलिंगन करता (अपनाता) है; और इस प्रकार **वही** हमारी प्रेरणा का स्रोत होता है। इस प्रकार, अब हम अपने प्रभु को शारीरिक तौर पर नहीं बल्कि आत्मिक तौर पर जानते हैं?

“अब यह सब बातें परमेश्वर की ओर से हैं, जिसने मसीह के द्वारा हमारा मेल अपने साथ कर लिया, और हमें मेल-मिलाप की सेवा दी। अर्थात् परमेश्वर, लोगों के अपराधों का दोष उन पर न लगाते हुए, मसीह में जगत का मेल-मिलाप अपने साथ कर रहा था और उसने हमें मेल-मिलाप का वचन सौंप दिया है। इसलिए हम मसीह के राजदूत हैं, मानो परमेश्वर हमारे द्वारा विनती कर रहा है; हम मसीह की ओर से तुम

से निवेदन करते हैं कि परमेश्वर के साथ मेल-मिलाप कर लो" (दू0 कुरि0 5:18-20)। परमेश्वर ने मसीह पर विश्वास करने वालों का मेल-मिलाप कर दिया है अर्थात् अब वे शत्रुता की स्थिति से मित्रता की स्थिति में आ चुके हैं। परमेश्वर द्वारा हमारे जीवन में यह मेल-मिलाप का काम इसलिए किया गया ताकि उसके साथ हमारा टूटा हुआ सम्बन्ध पुनः स्थापित हो जाए। उसके साथ हमारा मेल-मिलाप होने के अतिरिक्त उसने हमें मेल-मिलाप की सेवकाई भी दी है – अर्थात् दूसरों को उसकी ओर लाना। कहने का मतलब, प्रथमतः दूसरों को मसीह में उपलब्ध उद्धार में लाना, और तत्पश्चात्, उसके साथ हमारी पहचान स्थापित करने हेतु मसीह द्वारा पूर्ण किए हुये समस्त कार्य को समझने एवं अपनाने में सेवा-सहायता करना। प्रभु के राजदूत के तौर पर हम अपने सच्चे (शाश्वत) स्वदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतएव दूसरों को प्रभु से मेल-मिलाप कर लेने की विनम्र सलाह देते हैं। क्योंकि लिखा है : "जो पाप से अनजान था, उसी को उसने हमारे लिए पाप ठहराया कि हम उसमें परमेश्वर की धार्मिकता बन जाएं" (दू0 कुरि0 5:21)। यही मेल-मिलाप का संदेश है। मसीह हमारे पाप का दंड अपने ऊपर लेकर हमारे बदले दंड सहा। इसके परिणामस्वरूप उसके द्वारा अब परमेश्वर की धार्मिकता (क्षमा-दान या निर्दोषता) हमें प्राप्त हो सकती है। परमेश्वर और मनुष्य के मेल-मिलाप का ईश्वरीय संदेश यही है।

“अतः उसके सहकर्मी होने के नाते, हम भी तुमसे यह आग्रह करते हैं कि परमेश्वर के अनुग्रह को व्यर्थ करने के लिए ग्रहण न करो—क्योंकि वह कहता है, ‘ग्रहण किए जाने के समय मैंने तेरी सुन ली, और उद्धार के दिन मैंने तेरी सहायता की’। देखो, अभी ग्रहण किए जाने का समय है। देखो, अभी वह उद्धार का दिन है” (दू० कुरि० 6:1–2)। यहूदी व्यवस्था—बंधन के इन भ्रामक शिक्षकों ने जैसे गलातिया और कुलुस्से क्षेत्र की कलीसियाओं में पौलुस की खरी शिक्षा का विरोध किया था, वैसे ही उन्होंने कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासियों को भी परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्यता हेतु व्यवस्था—बंधन में डालने की भरसक कोशिश द्वारा भरमाना चाहा। अतः पौलुस लिखता है: “परमेश्वर के अनुग्रह को व्यर्थ करने के लिए ग्रहण न करो”। कुरिन्थुस के विश्वासियों ने सुसमाचार ग्रहण किया था और उस पर विश्वास किया था। अब पौलुस यह नहीं चाहता था कि मसीह में प्राप्त मुफ्त उद्धार—आशिष को छोड़कर वे पुनः व्यवस्था (स्व—प्रयास रूपी धर्म—कर्म के) बंधन में पड़ जाएं। यशायाह भविष्यवक्ता की पुस्तक से हवाला देते हुए पौलुस ने यह लिखा : “ग्रहण किए जाने के (अपनी कृपा के) समय मैंने तेरी सुन ली, उद्धार करने के दिन मैंने तेरी सहायता की है” (यशा० 49:8)। इस प्रकार, उस समय उनके जीवन में परमेश्वर अपनी कृपा का कार्य कर रहा था। प्रभु परमेश्वर अपनी कृपा से उन्हें उद्धार प्रदान कर चुका था, अतएव पौलुस यह नहीं चाहता था कि वे फिर से व्यवस्था की रीति—विधियों के बन्धन में पड़ें।

“हम किसी बात में ठोकर का कारण नहीं बनते जिससे कि हमारी सेवा पर आंच आए, परन्तु हर एक बात में परमेश्वर के योग्य सेवकों के सदृश अपने आप को प्रस्तुत करते हैं, अर्थात्, बड़े धैर्य में, क्लेशों में, अभावों में, संकटों में, मार खाने में, बन्दी किए जाने में, उत्पातों में, परिश्रम में, जागने में, भूख में” (दू० कुरि० 6:3-5)। परमेश्वर के वचन का प्रचार एवं कलीसिया-स्थापना करने के लिए पौलुस को प्राप्त ईश्वरीय बुलाहट कोई आसान जिम्मेदारी नहीं थी; क्योंकि इसमें कठिनाइयां, सतावट एवं दुःख-दर्द की बहुतायात भी शामिल थी। आजकल के बहुत से (क्रिश्चियन) लोगों में यह गलत धारणा पाई जाती है कि परमेश्वर का अनुसरण करने वालों की जिन्दगी सिर्फ आनन्दमय, सुखी, समस्या-रहित और आसान ही होगी। जबकि प्रभु यीशु मसीह ने यह कहा कि परमेश्वर के अनुग्रह का संदेश लोगों के जीवन में संघर्ष, द्वंद, विरोध एवं टकराव लाएगा। “मैं पृथ्वी पर आग लगाने आया हूँ और मेरी बड़ी इच्छा है कि वह अभी सुलग जाती। परन्तु मुझे एक बपतिस्मा लेना है, और जब तक वह पूरा न हो जाए मैं कौसी दुविधा में पड़ा हूँ! क्या तुम सोचते हो कि मैं पृथ्वी पर मेल कराने आया हूँ! मैं तुमसे कहता हूँ, नहीं, वरन् फूट डालने आया हूँ। क्योंकि अब से जिस घर में पांच सदस्य हों उनमें परस्पर विरोध होगा, तीन, दो के विरुद्ध और दो, तीन के। वे एक दूसरे के विरोधी होंगे, पिता, पुत्र का और पुत्र, पिता का। मां, बेटी की और बेटी, मां की; सास, बहू की और बहू, सास की विरोधी होंगी” (लूका 12:49-53)। इसमें कोई संदेह नहीं कि परमेश्वर के सेवक का कार्य-दायित्व एक कठिन बुलाहट है। अपने जीवन में **आत्मा** के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए पौलुस ने ऐसी समस्याओं एवं कठिनाईयों को सहर्ष सहन किया। **आत्मा** के अधीन जीवन व्यतीत करने पर “मसीह” ही हमारे हृदय का सर्वस्व होगा और परमेश्वर के वचन की सत्यता के प्रति हम इतने अधिक कायल होंगे कि इस प्रक्रिया के दौरान

हमारे ऊपर आने वाली कठिनाइयां नगण्य लगेंगी। प्रभु के साथ दुःख-सहन (रूपी विशिष्ट अवसर) आनन्दप्रद होगा। इसके विपरीत, शारीरिकता के अनुसार जीवन बिताने पर हम सिर्फ स्व-केन्द्रित होंगे और अपनी मनचाही चीजों का बचाव (संरक्षण) करना चाहेंगे – अपने स्वास्थ्य का, अपनी सम्पत्ति का, अपने पद व प्रतिष्ठा का (इत्यादि)। अतः जब परमेश्वर की सेवकाई का हमारी अपनी इच्छाओं (योजनाओं) से टकराव होता है तब हम बड़ी आसानी से निराश-हताश होकर (सेवा से) दूर भागने लगते हैं।

“पवित्रता में, ज्ञान में, धीरज में, कृपालुता में, पवित्र आत्मा में, सच्चे प्रेम में, सत्य के वचन में, परमेश्वर के सामर्थ्य में, धार्मिकता के हथियारों को दाएं-बाएं हाथों में लेकर” (दू० कुरि० ६:६-७)। यहां पौलुस ने यह बताया है कि उसने तथा उसके सहयोगियों ने प्रभु की सेवकाई में कठिनाईयों एवं समस्याओं को किस प्रकार सहा। मसीही सेवकाई के दौरान कठिनाईयों एवं समस्याओं का सामना करते हुए पौलुस तथा उसके सहकर्मियों ने पवित्रता, ज्ञान, धीरज, कृपालुता, प्रेम, धार्मिकता और सत्यता का आचरण किया। घोर सतावट, समस्याओं और कठिनाईयों के मध्य ऐसा आचरण सिर्फ “पवित्र आत्मा” के चलाए चलते हुए ही संभव है। शारीरिकता के अनुसार जीवन बिताने पर ऐसी कठिन परिस्थितियों में सिर्फ क्रोध, प्रतिकार अथवा निराशा की भावना ही भड़कती है।

“आदर और निरादर में, यश और अपयश में, बदनामी, और सुनामी में, धोखा देने वालों के सदृश समझे जाते हैं फिर भी सच्चे हैं, अनजाने के सदृश फिर भी प्रसिद्ध, मरते हुआ के सदृश फिर भी देखो हम जीवित हैं, ताड़ना पाने वालों के सदृश फिर भी जान से मारे नहीं जाते, शोकितों के सदृश परन्तु सदैव आनन्द मनाते हैं, कंगालों के सदृश परन्तु बहुतों को धनी बना देते हैं, ऐसों के सदृश समझे जाते हैं जिनके

पास कुछ नहीं, फिर भी हम सब कुछ रखते हैं" (दू0 कुरि0 6:8-10)। अब संत पौलुस अपने साथ तथा अपने सहकर्मियों के साथ विभिन्न लोगों द्वारा किए गये कुछेक प्रकार के व्यवहार का उल्लेख करता है। ऐसे गलत व्यवहार को सहते हुए उन्होंने **पवित्र आत्मा** के **फल** प्रकट किए। कहीं-कहीं उनका आदर-मान एवं स्वागत हुआ; लेकिन अधिकतर जगहों पर उनके साथ अपराधी या शत्रु जैसा व्यवहार किया गया। कई जगह लोगों ने उनके बारे में झूठा दोषारोपण किया, किन्तु कभी-कभी उनके बारे में सच भी कहा गया। हालांकि पौलुस एवं उसके साथी परमेश्वर के सत्य का प्रचार कर रहे थे, लेकिन कुछ लोगों ने उन्हें धोखेबाज की भी संज्ञा दी। उन्हें बहुत से लोग जानते थे और उनके विश्वास की सत्यता को भी जानते थे, लेकिन उनके प्रचार के प्रति विरोध को देखकर उनके साथ अनजानों जैसा व्यवहार किए। अपने अहंकार-मरण की इस आध्यात्मिक प्रक्रिया के दौरान पौलुस एवं उसके साथी, जीवित रहे। बेशक उन्हें मारा-पीटा गया, उन पर पथराव किया गया, उन्हें जेल में डाला गया और कई जगहों से भगा दिया गया; किन्तु परमेश्वर ने उनकी रक्षा-सहायता किया। उन्होंने अनगिनत कठिनाईयों, परीक्षाओं एवं समस्याओं का सामना किया। इतना ही नहीं, विश्वासियों को भटकाए जाते हुए भी देखा। इन सब के बावजूद वे अपने सर्वसत्ताधारी प्रभु परमेश्वर के अनुग्रह एवं विश्वसनीयता में आनन्दित रहे। हां, सांसारिक व शारीरिक तौर पर वे निर्धन थे, लेकिन जिस ईश्वरीय सुसंदेश की उन्होंने शिक्षा दी उसके द्वारा बहुतों को "मसीह में" धनाढ्य बनाए। यद्यपि वे भौतिक दृष्टि से कंगाल थे, तथापि "मसीह के साथ उत्तराधिकारी" थे; और 'जीवन एवं ईश्वर-भक्ति' के लिए आवश्यक समस्त आध्यात्मिक आशिषों से भरपूर थे। यह लोग **आत्मा** के अनुसार जीवन व्यतीत किए।

"हे कुरिन्थियों, हमने तुमसे खुलकर बातें की हैं, हमारे हृदय खुले हुए हैं। हम तुम्हारे लिए रुकावट के कारण नहीं हुए, परन्तु तुम

स्वयं अपने में रुकावट पाते हो। तुम्हें बच्चे समझकर अब मैं कहता हूँ कि तुम भी इसके बदले अपने हृदय हमारे लिए खोल दो” (दू० कुरि० 6:11–13) कुरिन्थुस के विश्वासियों के मध्य पौलुस ने खुले मन व ईमानदारी के साथ प्रेमपूर्ण सेवा की थी। रोचक है कि ऐसी प्रेमपूर्ण सेवा के प्रति कुरिन्थुस के विश्वासियों में तिरस्कार व भटकाव आने लगा था। अतएव पौलुस ने यह समझाया कि उसकी सेवा-शिक्षा से दूर होने के बजाय उन्हें प्रेम एवं स्वीकार्यता के साथ उसकी ओर वापस आने की जरूरत है। सत्य-शिक्षा से तथा सत्य की शिक्षा देने वालों से दूर होना शारीरिकता के चलाए चलने का एक चिन्ह है।

“अविश्वासियों के साथ असमान जुए में न जुतो, क्योंकि धार्मिकता का अधर्म से क्या मेल? या ज्योति की अंधकार से क्या संगति? और मसीह का बलियाल से क्या लगाव? या विश्वासी का अविश्वासी से क्या सम्बन्ध? या मूर्तियों से परमेश्वर के मंदिर का क्या समझौता? क्योंकि हम तो जीवित परमेश्वर के मंदिर हैं, जैसा कि परमेश्वर ने कहा, ‘मैं उनमें निवास करूँगा और उनमें चला फिरा करूँगा और मैं उनका परमेश्वर होऊँगा और वे मेरे लोग होंगे। इसलिए प्रभु कहता है, ‘उनमें से निकलो और अलग हो जाओ, और जो कुछ अशुद्ध है उसे न छुओ तो मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा; और मैं तुम्हारा पिता होऊँगा और तुम मेरे बेटे और बेटियाँ होंगे’। सर्वशक्तिमान प्रभु यह कहता है” (दू० कुरि० 6:14–18)। परमेश्वर के अनुग्रहपूर्ण सच्चे सुसमाचार पर अविश्वास करने वाले झूठे शिक्षक अपने व्यवस्था-पालन के सहारे ईश्वरीय स्वीकार्यता की कमाई का प्रचार कर रहे थे और बाहरी तौर पर ‘सुसमाचार’ मानने का दावा एवं दिखावा कर रहे थे। अतः पौलुस ने कुरिन्थुस के विश्वासियों से कुछेक ऐसे प्रश्न किए जिनसे यह प्रकट व स्पष्ट हो सके कि “अविश्वासियों के साथ असमान जुए में” जुड़ना अनुचित है। धार्मिकता और अधर्म (दुष्टता) में क्या समानता? कुछ नहीं।

क्या ज्योति व अंधकार की मिलावट ठीक है? नहीं। या तो सिर्फ ज्योति रहती है या फिर ज्योति जाती रहती है और सिर्फ अंधकार रहता है। क्या **मसीह** और शैतान में एकता, संगति या मेल-मिलाप है? नहीं। विश्वासियों और अविश्वासियों में क्या समानता है। ऐसी समानता तभी दिखेगी जब कोई विश्वासी केवल शारीरिकता में जीवन बिताता है। लेकिन मसीह के साथ अपनी पहचान को समझने वाले विश्वासी की अभिलाषाएं एवं उसका लगाव बदल जाता है और आत्मा के चलाए चलने वाला विश्वासी अपने पुराने जीवन की बातों (बुरे चालचलन) से असम्बद्ध होने लगता है (गला0 5:24)। पवित्र आत्मा का निवास हो गए परमेश्वर के “मंदिर” स्वरूप विश्वासियों में तथा दूसरी इहलौकिक वस्तुओं एवं व्यक्तियों की उपासना करने वालों में क्या समानता? पौलुस ने सत्रहवें पद में मसीही विश्वासियों के लिये ईश्वरीय इच्छा-उद्देश्य की ओर इशारा किया है – **आत्मा** के अनुसार आचरण करना, पवित्र एवं धर्मी जीवन बिताना तथा इहलौकिक दुष्टता के अनुसार जीवन-व्यवहार से परे (अलग) रहना।

“अतः हे प्रियों, जबकि हमें ये प्रतिज्ञाएं प्राप्त हैं तो आओ, परमेश्वर के भय में पवित्रता को सिद्ध करते हुए, हम देह और आत्मा की सब अशुद्धता से अपने आपको शुद्ध करें” (दू0 कुरि0 7:1)। प्रभु परमेश्वर यह चाहता है कि विश्वासीजन उसका सच्चा ज्ञान ग्रहण करें (दू0 पत0 3:18)। पापी मनुष्य के प्रति ईश्वरीय प्रेम, अनुग्रह एवं दया की सच्ची समझ हमें ऐसी बातों से दूर करती है जो परमेश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध में बाधक होती हैं। इसके साथ ही साथ, परमेश्वर के प्रेम व अनुग्रह की सच्ची समझ हमारे जीवन में ईश्वर-भक्ति व पवित्रता में उन्नति की ओर ले जाने वाली बातों को अपनाने की आकांक्षा विकसित करती है।

† † †

इस श्रंखला की पुस्तकों का निम्नलिखित क्रम में अध्ययन ज्यादा लाभप्रद होगा :

1. परमेश्वर-कृत उद्धार
2. प्रेरितों के कार्य
3. वह मुझमें और मैं उसमें
4. रोमियों
5. इफिसियों
6. पहला कुरिन्थियों
7. पहला तीमुथियुस
8. तीतुस
9. पहला और दूसरा थिस्सलुनीकियों
10. प्रकाशितवाक्य
11. गलातियों
12. कुलुस्सियों
13. दूसरा कुरिन्थियों
14. फिलिप्पियों